लिखना क्या है ?
बच्चों को कैसे सिखाएँ लिखना ?

इस अंक का संवाद 'लिखना' विषय पर है। संवाद में शामिल थे : गुलज़ार, अमोली बामनी, डी ब्लॉक जाँजगीर, छत्तीसगढ़ से; खजान सिंह, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, उत्तराखंड से; दीपक कुमार राय, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर से; दीक्षा, शासकीय स्कूल दामखेड़ा, कोलार, मध्यप्रदेश से; और मृत्युंजय, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से। चर्चा को प्रतिभा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून, उत्तराखंड ने फ़ेसिलिटेट किया था। –सं.

प्रतिभा : हम सभी लम्बे समय से शिक्षा में काम कर रहे हैं, और जानते हैं कि लिखने को लेकर फ़ील्ड में किस तरह की चुनौतियाँ हैं। बच्चा जब स्कूल आता है तो बोलने और सुनने की भाषाई दक्षताओं के साथ, वह बहुत सारे शब्द, बहुत सारे तर्क लेकर आता है। बहुत सारी बातें कहने की क्षमता रखता है। लेकिन जब कहीं गई बात को उसे लिखना या पढ़ना होता है तो उसे बहुत दिक़्क़त आती है। लिखना सुनते ही उस बच्चे को लगता है कि ये कुछ नई चीज़ है। कबूतर, जिसके संग वह खेल रहा है, पतंग, जो वो उड़ा रहा है, वह आसान है, किन्तु पतंग को लिखने की बात आते ही मुश्किल आती है और यह मुश्किल लगातार बढ़ती भी जाती है। लिखना हम बड़ों के लिए भी एक चुनौती है। हम सभी यही सोचते हैं कि बोलकर बात कर लेते हैं, लिखने की बात क्यों कर रहे हैं। यह संवाद इसी बात पर है कि लिखना चुनौती कैसे बन जाता है?

गुलज़ार आप बताएँ कि लिखने को लेकर प्राथमिक कक्षाओं में बुनियादी तौर पर किस तरह की चुनौतियाँ आती हैं। यानी, कक्षा 1 व 2 में बच्चे किस तरह की दिक़्क़तों से जूझते हैं?

गुलज़ार : मैं कक्षा 2 और 3 को पढ़ाता हूँ। जैसा कि हम जानते हैं, स्कूल में जब बच्चे पहली बार आते हैं, वे बात करने में माहिर होते हैं। लेकिन लिखने के बारे में बात करने पर वो हिचकिचाते हैं, क्योंकि लिखना उनके लिए एक नई चीज़ होती है। उन्होंने थोड़ी-बहुत डूडलिंग की होती है, चित्र बनाए होते हैं। लेकिन हम शिक्षक समझते हैं कि लिखना माने सावधानी से, साफ़ लिखना है। यही बच्चे भी पकड़ लेते हैं। वे भी यही समझने लगते हैं कि अगर सही, साफ़ नहीं लिखेंगे तो ग़लत हो जाएगा। फिर डाँट मिलेगी और बाक़ी लोग हँसेंगे। दूसरी बात, जब बच्चे कक्षा 1 में स्कूल आते हैं, तब उनमें बहुत कुछ सीखने की क्षमता होती हैं। वे लिखने की बुनियादी बातें सीख सकते हैं। इसमें यह बात बहुत मायने रखती है कि हम किस तरीक़े से शुरू करते हैं। जैसे– हम बच्चों से कैसे बात करते हैं; उनके साथ खेलते हैं कि नहीं; क्या उनकी बातों को ध्यान से सुनते हैं या नहीं; उनकी बातों में दिलचस्पी लेते हैं या नहीं। लिखना चूँकि बच्चों के लिए नया होता है तो थोड़ा समय लगता है। उनके साथ विभिन्न मुद्दों पर बातचीत करने से विचार बनाने में मदद मिलती है। बातचीत, कविता, कहानी सुनाना, यह सब भी उनको लिखना सीखने में मदद



करता है, लेकिन अच्छा लिखना वास्तव में बच्चों को लिखने का अवसर देना है। उन्हें जितना ज़्यादा अवसर, समय मिलता है, वे बेहतर लिख पाते हैं। इस सीखने में धैर्य बहुत बड़ी चीज़ है।

प्रतिभा : लिखना सीखने का आशय क्या है? मतलब, कक्षा 1 का बच्चा कितना सीख जाए? कक्षा 2 की ओर इस प्रोग्रेशन को कैसे देखते हैं? हम कब कहेंगे कि अब उसको लिखना आ गया या आ रहा है?

गुलज़ार : लिखने से आशय है, बच्चा अपनी बातों / विचारों या अनुभव को लिपि का प्रयोग करते हुए सम्प्रेषित कर पाए। कभी-कभार हम यह सोचते हैं कि कक्षा 1 का बच्चा जब तक पूरी वर्णमाला नहीं सीख जाता, मात्रा नहीं सीख जाता, तब तक हम लिखने की शुरुआत नहीं कर सकते। कई बार बच्चा चार-पाँच अक्षरों को, कुछ मात्राओं को नहीं सीख पाया है तो हम उसे लिखने का अवसर ही नहीं देते हैं। लेकिन मुझे यह ठीक नहीं लगता। मुझे लगता है, बच्चा अगर कुछ मात्राओं या अक्षरों को नहीं भी जान पा रहा है, तब भी लिखने की शुरुआत कर सकते हैं। यहाँ तक कि दो अक्षरों से भी हम अर्थपूर्ण लिखना शुरू कर सकते हैं, क्योंकि ये जो लिखने का काम है, पढ़ने के साथ-साथ, समझने के साथ-साथ होता है।

प्रतिभा : गुलज़ारजी ने बताया कि लिखना कई तरीक़ों से हो सकता है। आकृतियाँ बनाना और डूडलिंग भी लिखने का ही एक तरीक़ा है। ये प्राथमिक स्तर की बात थी। दीपकजी से सवाल है कि क्या उच्च प्राथमिक कक्षाओं में लिखने की चुनौतियाँ कुछ बदलती हैं, वहाँ कैसी चुनौतियाँ होती हैं?

दीपक : मेरा अनुभव है कि प्राथमिक में शुरू से ही जो बोर्ड पर लिखा है, उसे ही लिखने का अभ्यास होता है। यह प्रक्रिया उच्च प्राथमिक कक्षाओं में भी जारी रहती है। अब दिक़्क़त यह हो जाती है कि शुरू से लिखने का यही अभ्यास है कि कभी आड़ी-तिरछी रेखाओं को, वर्णों व मात्राओं को बोर्ड से उतरवा दिया, कभी शब्दों से कुछ तय वाक्य बनाकर दे दिए, प्रश्नोत्तर याद करवा लिए। इससे बच्चों का लिखना मूलतः परीक्षाओं में प्रश्नों के जवाब लिखने तक ही सीमित हो जाता है। फिर भी मुझे लगता है कि प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे ज़्यादा निर्भीकता से अपने विचार लिख पाते हैं। उच्च प्राथमिक कक्षाओं में मुझे उनकी हिचक थोड़ी और अधिक

लगी। दूसरी, तीसरी, चौथी के बच्चे ग़लती को लेकर इतने कॉन्शस नहीं होते हैं। वो लिखते हैं, ग़लत हो या सही। लेकिन उच्च प्राथमिक कक्षाओं में ये एक अलग तरीक़े की चुनौती है कि उनपर सही लिखने का इस तरह का दबाव बन गया होता है कि वो लिखने से ही दूर हो जाते हैं।

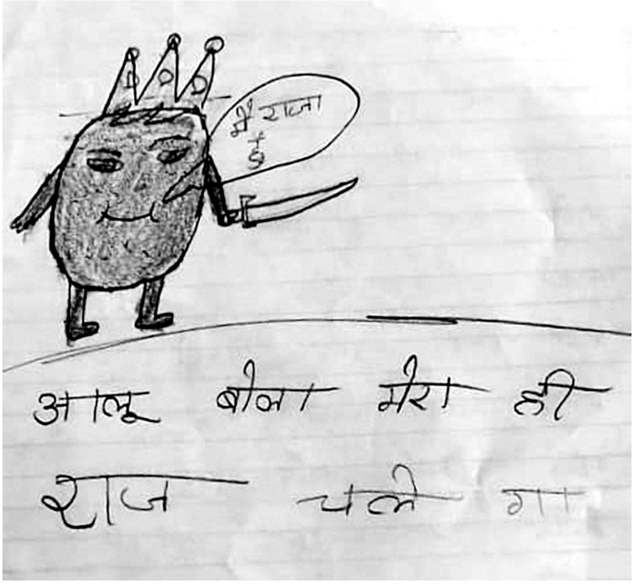
नक़ल का दूसरा असर यह है कि उनका लिखना यांत्रिक हो जाता है। उसमें उनके अनुभव, उनका मन, उनकी कल्पनाएँ, सोच-विचार, आदि की जगह ही नहीं होती। यह वैसा ही है, जैसे इतिहास के ही किसी पाठ को बोर्ड से लिखवा दिया जाए। बच्चा कहीं कुछ कोरिलेट नहीं कर पाता है, और इन सबसे ही लिखने के प्रति अरुचि बनती है, अलगाव होता है और नीरसता जगह बनाने लगती है। उसके लिए यही मान्यता बन जाती है कि शिक्षक जो लिख देगा, वही उसे लिखना है। अपने मन से और अपनी सोच, कल्पना से वो नहीं लिख पाता।

एक और चीज़ कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में हम बच्चों के साथ बहुत बात नहीं कर पाते हैं। हमारे पास उपयुक्त सवालों की घोर कमी है। जब इतिहास के बारे में हम बच्चों से बातचीत कर रहे थे तो उनके पास सवाल नहीं थे और शिक्षकों के पास भी बच्चों से पूछने के लिए उपयुक्त सवाल नहीं थे। हम बस टैक्स्ट तक सीमित रहते हैं, उसी पर बात करते हैं, उसे ही हम समझाते हैं। एक बात और, यह सोच बहुत पहले से चली आती है कि मौखिक बातचीत करेंगे तो बच्चों को लिखना नहीं आएगा। हालाँकि, बहुत-से भाषा शिक्षा विशेषज्ञ इसके ख़िलाफ़ बहुत मज़बूत तर्क देकर मौखिक भाषा का लिखना सीखने के लिए महत्त्व रेखांकित करते हैं। लेकिन मौखिक बातचीत हो पाए उसके लिए सही सवालों, मुद्दों की भी कमी है।

समर कैम्प का एक अनुभव बताना चाहूँगा। समर कैम्प में तीसरी, चौथी, पाँचवीं के, और दो-चार छठी कक्षा के बच्चे भी थे। हम कहानी बना रहे थे। हमने तय किया कि बारी-बारी से सब बोलेंगे और हर एक वाक्य बोर्ड पर लिखेंगे। एक बच्चे ने कहा कि जंगल में एक राजा था। अगले बच्चे ने कहा कि वह बहुत दयालु था। अगला कथन था, एक दिन राजा शिकार खेलने



चित्र : हीरा धुर्वे



गया। अब कहानी आगे नहीं बढ़ पा रही थी। हमने कहा, "सोचो, राजा बहुत दयालु था, वो जंगल में शिकार करने गया फिर क्या हुआ होगा!" बच्चों ने कहा कि शिकार करने वाला वाक्य हटाते हैं। बहुत दयालु था इसके बाद से चालू करते हैं।... उसके राज्य में अकाल पड़ा तो उसने अपने मंत्रियों को बुलाया। फिर उसने कहा कि अकाल पड़ गया है, इसके लिए हम लोग इस समस्या को कैसे हल करें? हल था कि जो अनाज के व्यापारी हैं, उनके पास जो अनाज है, उसको लिया जाए और जनता में बाँट दिया जाए। ये एक तर्क बनता है कि राजा उदार था तो राजा ने उदारता का क्या काम किया? यह तार्किकता बच्चे समझ पा रहे थे।

जब समूहों में कहानी बनाकर लिखने की बात आई, तब बोर्ड पर जो कहानी लिखी थी, उससे अलग कहानी एक ही समूह बना पाया। मुझे लगता है कि लिखने में हिचक ज़्यादा है कि कहीं हम ग़लत न लिख दें। लेखन एक निजी प्रक्रिया है। सवाल-जवाब लिखना और कोई कविता-कहानी लिखना, इन दोनों में अन्तर है।

अभी कुछ टेस्ट पेपर लेकर मैं एक विद्यालय गया था, वहीं आँगनाबाड़ी भी चलती है। कक्षा 4 के बच्चों को टेस्ट पेपर दिए थे। इस कक्षा में एक छोटी बच्ची भी आई। उसने बार-बार मुझसे कहा कि मुझे भी टेस्ट पेपर दीजिए। वह आँगनबाड़ी की थी मैंने उसे कुछ काम दे दिया। जब मैं कक्षा में था, उस दौरान कई बार वो आई और एक लाइन लिखकर दिखाती थी। एक आम बनाकर एक लाइन खींचकर पूछती, "कैसे सर, ठीक है, सर, ठीक है?" बच्चों को एक लकीर खींचकर भी काफ़ी ख़ुशी मिलती है। हमें लेखन को इसी तरह से लेकर जाना है। अकसर अक्षरों की सुघड़ता, शुद्ध-अशुद्ध में हम इतना फँस जाते हैं कि बच्चे का लिखने का आनन्द ही ख़त्म हो जाता है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि वर्तनी की अशुद्धियाँ स्थाई नहीं होंगी। वो धीरे-धीरे दूर होंगी ही।

प्रतिभा : मन का लिखना, आनन्द आना, जीवन से जुड़ा हुआ लिखना, लिखने के अवसर होना, ग़लतियों को देखने का नज़रिया, उनके लिए जगह, आदि से बच्चे का लिखने को लेकर डर कम होता है। खजानजी, आप बताएँ कि प्राथमिक और उच्च प्राथमिक, दोनों में लिखने की चुनौतियों को दूर करने के लिए हम क्या प्रयास करें, कैसे अवसर, कैसा माहौल बनाएँ कि कुछ बेहतर हो पाए?

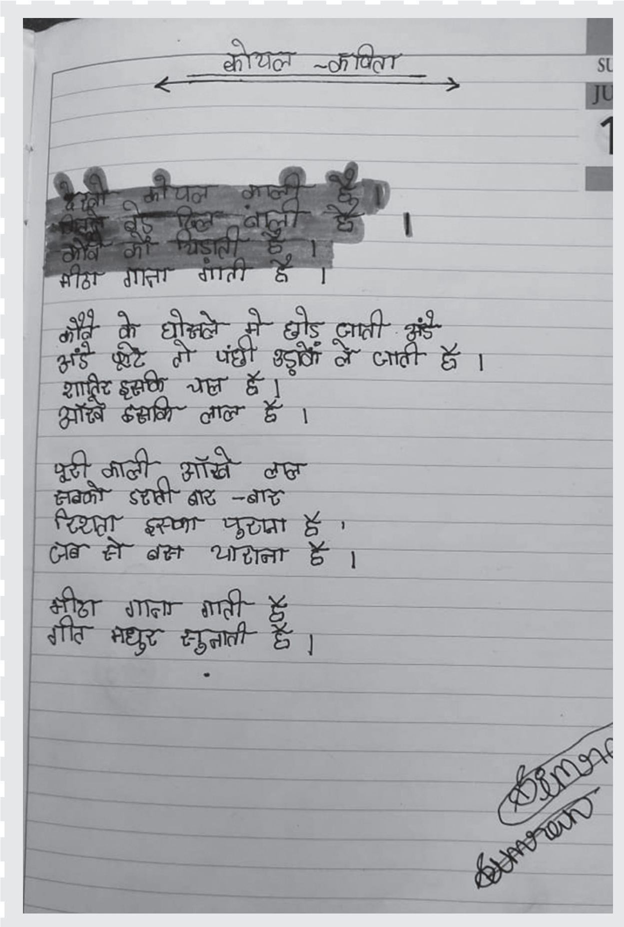
खजान : यह समझना ज़रूरी है कि हम लिखना किसको मान रहे हैं। कभी-कभी यह समूची प्रक्रिया आरम्भ से ही यांत्रिक होती है। ये एक ख़ास तरीक़े की परम्परा है। इसमें बच्चों से बातचीत नहीं होती और भाषा के कालांश में वो सारी प्रक्रियाएँ नहीं होतीं जो बच्चे को लिखने और सोचने की ओर ले जाती हैं। ज़ोर इस बात पर रहता है कि सारे लिपि चिह्न सुडौल, सुन्दर लिखने आ जाएँ। सुलेख, इमला व सवालों के तय जवाब लिखने आ जाएँ। लिखने की ये जो

सेट ऑफ़ प्रैक्टिसेस हैं, ये कहीं-न-कहीं सोच को कुन्द करती हैं। फिर दूसरा सवाल ये उठता है कि लिखें तो क्या लिखें? बात दरअसल यह है कि एकदम से लिखना नहीं आ जाता है। यह एक लम्बी प्रक्रिया का नतीजा होता है और उसी प्रक्रिया में ये कौशल धीरे-धीरे विकसित होता है।

यह मान लिया जाता है कि यदि बच्चों को बहुत सुन्दर, सुडौल तरीक़े के लिपि चिह्न बनाना, बोर्ड पर लिखी इबारत को उतारना, स्मृति-आधारित चीज़ें, जैसे प्रश्न का उत्तर, आ गईं, तो उसे लिखना आ गया। पर क्या यह उचित है? जैसे ही बच्ची को ख़ुद से सोचकर, ख़ुद की भाषा में अपनी सोच को अभिव्यक्त करना है, लिखित स्वरूप में भी करना है तो फँसावट हो जाती है। ऐसा लिखना, जिसमें यांत्रिक प्रक्रियाएँ ही होती हैं, उन अभ्यासों में बच्चे के मानसिक औज़ार ज़्यादा काम में नहीं आते। वहाँ कुछ स्मृतियाँ और गत्यात्मक कौशल ही काम में आते हैं। मगर जिसको हम स्वतंत्र रूप से लिखना, मन से लिखना या किसी उद्देश्य के लिए लिखना कहते हैं, यह क़ाबिलियत आहिस्ता-आहिस्ता ही आती है। मुक्तिबोध अपनी पुस्तक *एक साहित्यिक की डायरी* के पहले आलेख 'तीन क्षण' में कहते हैं कि लिखने के लिए, मन से लिखने के लिए सबसे पहली ज़रूरत है– जीवन के बेहद उत्कट अनुभव होने चाहिए। ऐसे अनुभव जो हमको बेचैन करते हैं, अन्दर से छटपटाते हैं अभिव्यक्त होने के लिए। यह अनुभव होने ज़रूरी हैं, वरना कोई लिखेगा क्या और कोई बोलेगा क्या? क्योंकि हम ख़ुद को बोलते हैं, ख़ुद को लिखते हैं। इस दृष्टि से यदि हम शिक्षण देखें तो भाषा शिक्षण में क्या हम बच्चे की क्रियाओं, अनुभूतियों, जीवन जगत के उसके अवलोकनों, उसकी महसूस की गई दुनिया को भाषा के दायरे में लाते हैं, क्या उनको जागृत करा पाते हैं? भाषा के चारों कौशल–सुनकर समझना, बोलकर व्यक्त करना, पढ़ना, लिखना–आपस में जुड़े हुए हैं। भाषा कालांश में अगर मौखिक भाषा पर काम किया गया है, बच्चे की अनुभूति की दुनिया को शब्द दिए गए हैं और उसे अगर लिपि का बुनियादी ज्ञान हो गया है तो छोटे बच्चों को अपनी बात व्यक्त करने में कोई दिक़्क़त नहीं होगी। बच्चों के पास कुछ शब्द होते हैं, और ये



चित्र : अंतरिक्ष



शब्द बहुत मायने रखते हैं। बातचीत के ज़रिए हम और अधिक शब्दों से बच्चों को वाक़िफ़ करा सकते हैं। भाषा दर्शन में एक नाम रूप जगत है। इस दुनिया में हर चीज़ का नाम है और जब नाम हमें पता चल जाता है तो उससे जुड़ी हुई कुछ अवधारणाएँ कहीं-न-कहीं जागृत हो जाती हैं और हमारी समझ का हिस्सा बनती हैं। तब व्यक्त करने में कोई ख़ास समस्या नहीं आती बजाय इसके कि जो बाधाएँ क्रिएट की गईं कि ग़लत नहीं लिखना है, या ये भी लिखना है।

आगे की कक्षाओं में हम अलग-अलग तरह के टैक्स्ट, और बच्चे की अनुभूति की दुनिया से बाहर के संसार का कितना एक्सपोज़र बच्चों को दे पाते हैं? क्योंकि छोटे बच्चे हों या बड़े लोग, सभी अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों से दुनिया की अनुभूति करते हैं। लेकिन इनकी एक सीमा है। एक समय के बाद इन अनुभवों में बहुत विस्तार नहीं होता। यहाँ दूसरों से बातचीत और पढ़ने की भूमिका अहम है। जब हम दूसरे के अनुभव पढ़ते हैं, समझते हैं, तब हमारे अनुभव, समझ और भाषा, सभी का विस्तार होता है। ये अनुभूति और अनुभव की दुनिया को बढ़ाते हैं, शब्दों के जो नए-नए अर्थ इससे जुड़ते हैं वो अभिव्यक्ति को धारदार बनाते हैं, समृद्ध करते हैं। कला का दूसरा क्षण तब होता है जब अपने अनुभव को मौखिक या लिखित रूप में व्यक्त करने में मन में सोचने की, चिन्तन की प्रक्रिया चलती है। अभिव्यक्ति का एक ख़ाका पहले मन के अन्दर बनता है और वो इस रूप में बनता है कि इस स्मृति के उस मॉड्यूल से स्मृति का कोई कतरा अलग हो रहा होता है। भाषा के मॉड्यूल से भाषा के कुछ शब्द पेश होते हैं कि व्यक्त करने के लिए क्या होना चाहिए। तीसरे क्षण में जब हम दिमाग़ में बनी कल्पना या फैंटेसी को शब्दों में बाँधते हैं, तब उनमें फिर बदलाव होते हैं। वो ऐसे भी हो सकते हैं कि उसके लिए कुछ मुकम्मल शब्द नहीं मिल रहे हैं। शब्दों की अपनी तासीर होती है– कोई बहुत भारी शब्द चाहिए, कोई बहुत खुरदरा, या मखमली शब्द चाहिए। मतलब आप उस शब्द की टोनल क्वालिटी भी देखते हैं, आप उसकी छुअन देखते हैं। क्रिएशन के लिए बहुत ज़रूरी होता है कि क्या हमारे पास इस तरीक़े का शब्द भण्डार है जो हमारी अभिव्यक्ति में जल्दी से सामने आता है? कुछ बदलाव समाज के नॉर्म / नियम के अनुसार भी होते हैं। मन में जैसा ख़ाका बनाया है, उस फ़ॉर्म में सबकुछ नहीं लिख सकते। कुछ

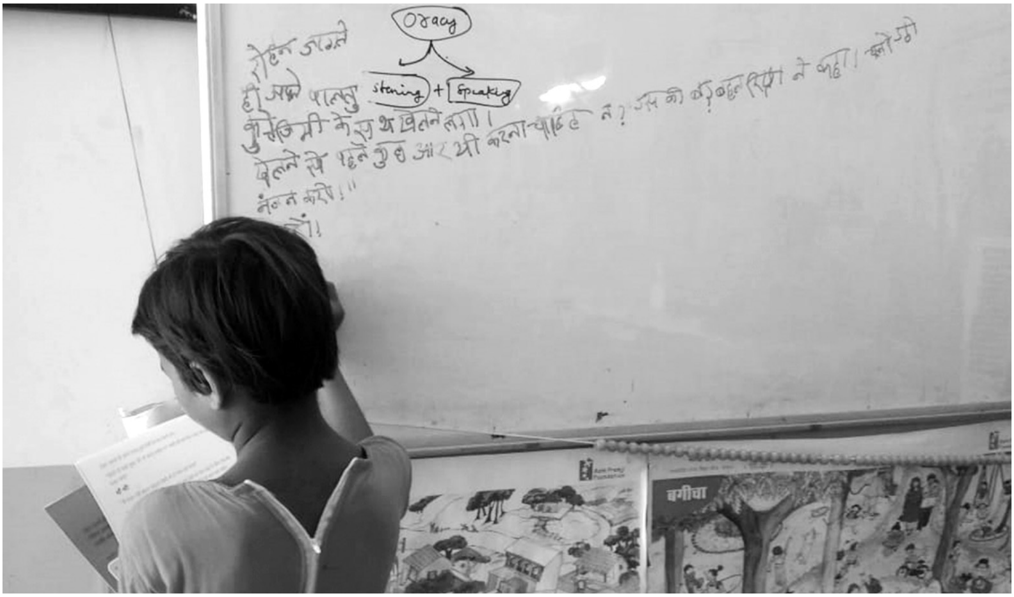
अभिव्यक्त होता है, कुछ में शब्दों की कमी आ जाती है। कहीं-कहीं पर उसमें मातृभाषा के शब्द हैं, कहीं-कहीं उसमें बड़े-बड़े विवरण आते हैं कि उसके लिए कोई एक मुकम्मल शब्द नहीं मिला ऐसा करके उसमें तमाम तरीक़े के बदलाव आते हैं। शब्दबद्ध होने के बाद एक रचना हमारे सामने आती है, लेकिन उसके बाद भी उसमें ख़ूब सारे संशोधन हो सकते हैं। पूरी बात है कि लिखने से पहले, लिखने के दौरान, और लिखने के बाद की पूरी एक प्रक्रिया है।

प्रतिभा : गुलज़ारजी, आपने कहा कि बच्चों को लिखने के कितने अवसर दे रहे हैं और कैसे उनके शब्दों की जगह बन रही है। लेकिन शिक्षकों पर लर्निंग आउटकम का भी दबाव होता है। आप लर्निंग आउटकम और स्वतंत्र रूप से लिखना सीखना, इन्हें कैसे देखते हैं?

गुलज़ार : लर्निंग आउटकम होते हैं। लेकिन हमें सिर्फ़ आउटकम पर ही ध्यान नहीं देना है, हमें लिखने की प्रक्रिया पर भी ध्यान देना है। हम लेखन को एकाएक शुरू नहीं कर सकते। मौखिक भाषा विकास, लेखन कौशल में मददगार होता है। पहले मैं मौखिक भाषा के लिए बच्चों के साथ छोटी-छोटी कविताएँ करता हूँ, इनपर बच्चों से बात होती है। मसलन, आम पर एक कविता की थी उसपर बात हुई। आम का रंग कैसा होता है, उसका स्वाद कैसा होता है, क्या उसकी चटनी भी बनाते हैं? कई बार विषयान्तर भी हो जाता है, लेकिन यह बातचीत उनके दिमाग़ में नई छवि / छवियाँ बनाने में मददगार होती है, ऐसा मुझे लगता है। कक्षा 1 में बातचीत भी काफ़ी होती है, लेकिन कक्षा 2 में, मैं बच्चों को इस बातचीत के बाद लिखने को भी कहता हूँ। जैसे– आम का चित्र बनाओ, इसपर कुछ वाक्य लिखो और बच्चे लिखते हैं कि आम मीठा होता है, इसका रंग पीला होता है। कुछ छोटी-छोटी चीज़ें भी उनके साथ करता हूँ। मसलन, अपना, अपने दोस्त का नाम लिखो, अपने मम्मी-पापा का या आसपास की वस्तुओं के नाम, यानी किचन में क्या-क्या होता है, लिखकर आना। आज मोबाइल के बारे में बच्चे लिख रहे थे। जो बच्चे लिखते हैं, उसको वे पढ़कर भी सुनाते हैं। पढ़कर सुनाने में से कुछ ग़लती अगर होती है तो उसको देखते हैं। जैसे– आम फलों का राजा है। मान लीजिए वहाँ राज लिख दिया है, पढ़कर बताओ, ‘राज’। अरे, ये राज हो गया तो उसमें क्या जोड़ोगे। ‘आ’ की मात्रा जोड़ेंगे तो ‘राजा’ हो जाएगा। यह पठन में भी काम आता है और लेखन में भी। यह शुरुआत है, बाद में जब धीरे-धीरे बच्चे दक्ष होते जाते हैं, नई गतिविधियाँ करते हैं।



चित्र : हीरा धुर्वे



प्रतिभा : एक और सवाल है कि लिखने में शुद्धता का आग्रह है इसे कैसे देखें? ग़लतियों को कैसे देखें? लिखने को देखने का शुद्धतावादी नज़रिया कई दफ़ा बच्चों को डरा देता है, इसपर मृत्युंजय आपकी राय जानना चाहेंगे।

मृत्युंजय : कृष्ण कुमार कहते हैं कि लिखना बातचीत का ही विस्तार है। माने, बोलने वाली ज़ुबान का ही विस्तार है लिखना। इस बात को थोड़ा और ध्यान से समझा जाना चाहिए। इस लिहाज़ से कि बच्चा शाला में जो भाषा सीखकर आता है, उस भाषा को कैसे सीखता है? ग़लतियाँ यहाँ भी होती हैं और उसके माता-पिता या समाज या जो भी अगल-बग़ल के लोग होते हैं वो उन ग़लतियों के पैटर्न को देखकर उसको अवसर देते हैं ताकि वो अपने-आप को सुधारता और भाषा सीखता चले। लेकिन ये काम हम लिखने में नहीं करते। लिखने में, ग़लतियाँ होंगी ही, पर ग़लतियों को स्वाभाविक मानना, उनसे एक पैटर्न चुनना और उसके ज़रिए धीरे-धीरे सिखाना, इसकी जगह हो। वाचिक भाषा में यह प्रक्रिया समाज और परिवेश बच्चे के साथ करता है। लेकिन जैसे ही लिखने की बात आती है, वैसे ही यह काम बन्द हो जाता है। दूसरा बिन्दु यह है कि लिखना स्थाई होता है, एक बार लिख दिया तो वह मिटेगा नहीं। तीसरा, लिखने का मूल्यांकन होता है, और लगातार होता है। बोलने का मूल्यांकन उस तरह से नहीं होता। और अगर होता भी है तो बच्चे में उसकी दक्षता है, इसलिए यहाँ वह मूल्यांकन से इतना डरता भी नहीं है। लेकिन लिखने के साथ जो मूल्यांकन है कि अब लिख दिया है, इसपर नम्बर मिलेगा या नम्बर कटेगा। एक तरह से लिखने में ग़लती करने की छूट नहीं होती। इस लिहाज़ से लिखना कक्षा के भीतर एक नीरस, बेजान-सी गतिविधि बनकर रह जाती है। अब आप सोचिए कि उच्च प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के बच्चे कविता की सप्रसंग व्याख्या पहले भी लिखते थे, आज भी लिखते हैं। अब सूरदास की सामान्य-सी कविता है जो बच्चों को समझ में भी आ रही है कि,

मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥

सरल-सी बात है। हर बच्चा इस अनुभव को जानता है। इससे बहुत अच्छे-से कनेक्ट कर सकता है। इसके इर्द गिर्द बहुत कुछ बुन सकता है। लेकिन भावार्थ करना है, कवि परिचय देना है। हमने भी परिचय रटा था और अभी भी रटा जाता है।

बाक़ी साथियों ने भी कहा ही कि एक, बच्चे क्या लिख रहे हैं और दूसरा, किसके लिए लिख रहे हैं? बच्चे का लिखना अध्यापक-केन्द्रित होता है। ये लिखा जा रहा है, इसको कोई देखेगा और इसपर मार्क करेगा या इसपर कोई शाबाशी मिलेगी, इसे बदला जाना चाहिए। हम कहते हैं कि वो अपना विचार नहीं व्यक्त कर पा रहा है, लेकिन वह विचार इसलिए व्यक्त नहीं कर पा रहा है क्योंकि विचार व्यक्त करने की उसे छूट ही नहीं है। उसको उन सारे विषयों पर लिखने की एक तरह से इजाज़त ही नहीं है, जिनपर वो लिखना चाहता है या बिना डरे लिख सकता है। दूसरी बात यह है कि क्या लिख रहे हैं? इससे जुड़ी हुई बात यह है कि परीक्षा से लिखने का सम्बन्ध हटे, या कम हो, तो शायद लिखने में और तत्त्व भरा जा सकेगा।

प्रतिभा : दीक्षा, आप बच्चों की लेखन की ग़लतियों को किस तरह देखती हैं और कैसे उनपर काम करती हैं? क्या अप्रोच होती है आपकी?

दीक्षा : जब बच्चे लिखते हैं तब ग़लतियाँ करते ही हैं, लेकिन मैं ग़लतियों पर फ़ोकस नहीं करती। मैं उनके विचारों को देखती हूँ। यह देखती हूँ कि बच्चों ने लिखने की कोशिश की है। अलग-अलग तरह के काम पर अलग फ़ीडबैक होता है। मुझे लगता है, यह ज़रूरी भी है। लेकिन यह फ़ीडबैक दिया कैसे जाए, यह भी सोचना ज़रूरी है। बच्चे ने ख़ुद कुछ लिखा होता है तो उसमें मैं ग़लतियों को ज़्यादा तवज्जो नहीं देती। यदि कुछ किताब से देखकर लिखा है तो कहती हूँ कि एक बार देख लो, सही लिखा है? कहीं कुछ ग़लती तो नहीं हुई? कभी-कभी कुछ ग़लतियों पर बातचीत भी होती है, कभी बाद में ठीक कर दिया जाता है ताकि बच्चे देखें व सही पढ़ें और बाद में ख़ुद-ब-ख़ुद ग़लती ठीक कर लें। ऐसे धीरे-धीरे बच्चे सीखते चले जाते हैं। ग़लती पर फ़ीडबैक आगे बढ़ने में मदद करें न कि बच्चे को हतोत्साहित करें।

प्रतिभा : पाठ्यपुस्तकों के अलावा वो कौन-से साधन हैं, कौन-सी प्रक्रियाएँ हैं, क्या वो तरीक़े हैं जो आप बच्चों को लिखना सिखाने या लिखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए अपनाते हैं?

गुलज़ार : पाठ्यपुस्तक एक संसाधन है लेकिन वो सीमित है। बच्चे रोज़ पाठ्यपुस्तक देखते हैं, यह उनके लिए कभी-कभी उबाऊ हो सकता है। ज़्यादा-से-ज़्यादा पुस्तकें बच्चों के पास हों, और छोटे बच्चों के लिए एक-दो पंक्तियों वाली ढेर सारी चित्रात्मक पुस्तकें। फिर बच्चों के साथ बातचीत होनी चाहिए। यह बातचीत खिलौने, किसी फ़िल्म या फिर कुर्सियाँ, टेबल, घड़ी, चाक, जैसी कक्षा में उपलब्ध या घर में उपलब्ध वस्तुओं पर हो सकती है। पाठ्यपुस्तकों से अलग और हमारे आसपास के बहुत सारे ऐसे संसाधन, जिनसे बच्चे बहुत अच्छे तरीक़े से परिचित हैं। हाँ, वहाँ पर एक चीज़ ध्यान रखनी चाहिए कि सन्दर्भ से बाहर यानी



चित्र : अंतरिक्ष

कि उनकी पहुँच से बाहर विषयवस्तु न हो, तो ज़्यादा अच्छा है। बहुत मज़ा करेंगे बच्चे, अगर जान-पहचान की चीज़ें हों। मसलन, एक बार एक बच्ची अपनी मम्मी के बारे में लिखकर लाई थी। अब उसकी मम्मी जीवित नहीं हैं लेकिन उसने लिखा। उसने बिन्दुवार उसमें अपनी बात लिखी थी।

प्रतिभा : बिना भाषा के पुल पर चढ़े आप किसी भी विषय तक पहुँच नहीं सकते। ये जो फ़र्क़ होता है भाषा में लिखना, मतलब हिन्दी में लिखना, या किसी भी लैंग्वेज में और किसी दूसरे विषय में लिखना, दोनों में क्या फ़र्क़ है, क्या समानता है? कैसे देखते हैं आप इसको?

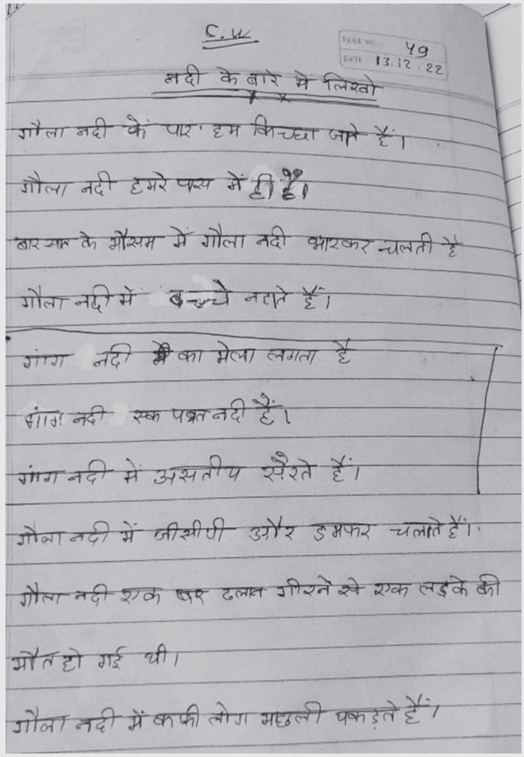
दीपक : किसी भी बच्चे के मन में जो सन्दर्भ हैं, दरअसल भाषा उन्हीं की एक अभिव्यक्ति है। सोचते-समझते हम एक सन्दर्भ को आकार देते हैं तो धीरे-धीरे लिखना सम्भव होने लगता है। लेकिन अगर यह खण्डित भाषा है, यानी हम कभी 'म' सिखा रहे हैं, कभी 'ए' की मात्रा सिखा रहे हैं, कभी 'ज' सिखा रहे हैं, इससे ज़ेहन में कोई सन्दर्भ ही नहीं बनता। तब मौखिक विचार ही नहीं आ पाते हैं, लिखना तो बहुत दूर की बात है। अगर हम मेज़ बता रहे हैं तो बच्चे जल्दी से उसे लिख लेंगे, लेकिन हम म, ए, ज़ कहें, तो मुश्किल होगी ही। लिखना ख़ुद को मुक्त करने का एक तरीक़ा भी है। अपनी तमाम गिरह-गाँठें हैं, उन्हें खोलने का भी एक तरीक़ा होता है। मैं कहूँगा, यह मनुष्य बनने का भी एक तरीक़ा है। कई बार होता है कि जैसे मैं शब्दों के साथ जब खेलता हूँ या शब्दों के साथ जब कुछ लिख रहा होता हूँ तो वे मुझे खोलते हैं, और मैं उनमें अपने सारे अर्थ खोल देता हूँ। साहित्य लिखना, कविता-कहानी लिखना हो, या कोई निबन्ध लिखना या किसी चीज़ पर आलेख लिखना या इतिहास लेखन हो, इसमें भाषा का जो सौन्दर्य है, सौष्ठव है, और भाषा का जो बोध है, मतलब किस शब्द के साथ कौन-सी चीज़ ज़्यादा अभिव्यक्त होगी, इसका हमें ख़्याल रखना चाहिए कि उसका टोन क्या है। अगर हम कोई रिपोर्ट कर रहे हैं, कोई अख़बारी भाषा लिख रहे हैं, उसमें फिर बहुत सारी चीज़ें ऐसी नहीं होनी चाहिए जो आम पाठकों से बहुत दूर हों और उसको एक रिपोर्ट पढ़ने के लिए दस बार डिक्शनरी देखनी



चित्र : हीरा धुर्वे

पड़े। और इसमें भी कोई शक नहीं कि अगर कोई नए शब्द नहीं होंगे या कोई नई तरह की बातें नहीं होंगी तो फिर उसकी जो भाषिक समृद्धि है वो शायद उतनी बेहतर नहीं बन पाएगी।

दूसरा, जब भी हम कुछ लिख रहे होते हैं तो माँग होती है कि उसका कुछ क्रम हो। यह ज़रूरी है। लेकिन कई शिक्षक साथी या कहीं हम लोग भी इस बात पर बहुत फ़ोकस करते हैं कि शब्द अच्छे होने चाहिए। अगर शब्द ही होते तो फिर कोई भी शब्दकोश दुनिया का सबसे अच्छा साहित्य होता, लेकिन शब्दों से साहित्य नहीं रचा जा सकता। उसके लिए जो ज़रूरी संकल्पनाएँ हैं, संवेदना है, आपका जो बोध है, ये सारी चीज़ें मिलकर किसी भी देखे हुए को, आपके दृष्टिकोण को विशिष्ट बनाती हैं। सारे लोग उन्हीं चीज़ों को देखते हैं, लेकिन सारे लोग जब अपने-अपने निजी विचारों को लेकर आते हैं तो उनका पूर्व अनुभव, उनकी संवेदना, उनका दायरा, उनके लेखन को अलग करता है। और यही इसकी विशिष्टता है कि अगर एक ही विषय पर दस लोग लिख रहे हैं तो दसों लोग अलग-अलग लिखेंगे। भले ही कुछ बेसिक्स उनके मिलेंगे, लेकिन अभिव्यक्ति उनकी अलग होगी क्योंकि बोध में, संस्कार में, पद, परिवेश, और अभ्यास में हम दरअसल सपनों का अभ्यास करते होते हैं। हम जिन शब्दों के अभ्यास करते हैं, वे भी हम बार-बार उपयोग करेंगे। लेकिन तब शब्दों के प्रति ज़िम्मेदारी का एहसास भी होना होगा। मुझे लगता है कि आप अपने लिखे हुए के बीच, अपने शब्दों, अपने जीए हुए के बीच, अपने कहे हुए के बीच जो उदासियाँ हैं, जीवन के जो दु:ख-संत्रास हैं, जो आनन्द है, जो सुख है, उनकी जितनी आपसदारी होती है, शायद आपका लेखन उतना ही प्रामाणिक और अच्छा होता है। अगर यह बच्चों के साथ भी होने लगे कि बच्चे जो सोचें, जो लिखें, उसे कह सकें,

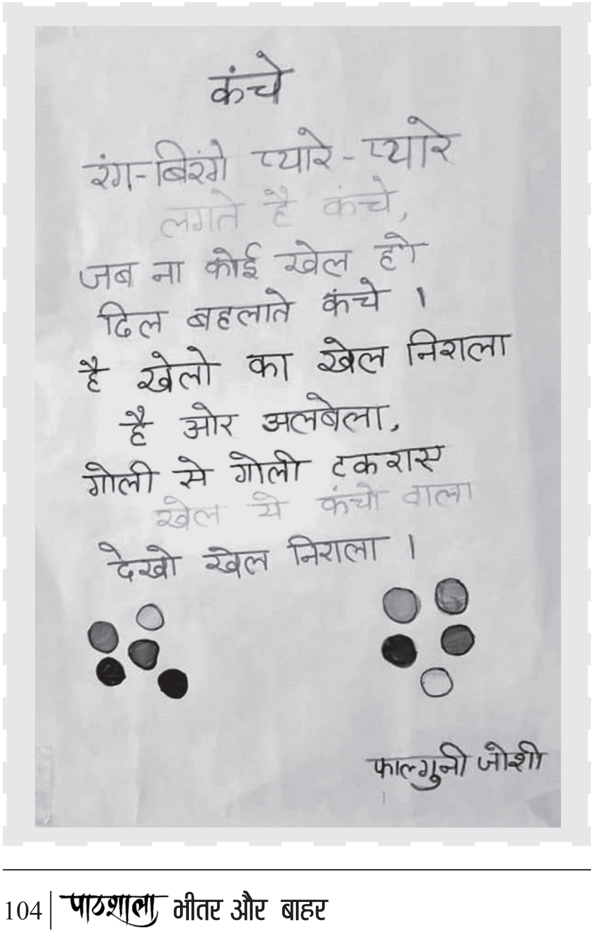


इससे बड़ी ख़ुशी उन्हें क्या होगी! जैसा सर ने कहा कि उसे अपनी माँ पर लिखना था और माँ पर लिख करके वो ले आई। अभी हम जब असेसमेंट टूल्स के लिए गए थे तब एक बच्ची ने कहा कि उसे 'ए' की मात्रा नहीं आती है। तब हमने 'रेल चली, भाई रेल चली' कविता पढ़ी। उसने सही पढ़ा। मैंने पूछा कि 'र' और 'ल' मिलाओ तो क्या बनता है? रेल बनेगा क्या? उसे समझ आ गया, तब उसने मुझे कम-से-कम दसियों ऐसे शब्द दिखाए जिनपर 'ए' की ही मात्रा लगी हुई थी। यदि हम लेखन को लिपि, वर्ण, और मात्राओं के ज्ञान से महदूद करेंगे तो वो अरोचक और अझेल बनता ही जाएगा। बच्चे का मुक्त लेखन थोड़ा अनगढ़ होगा, थोड़ा अशुद्ध होगा, ठीक है, लेकिन यह उसके मन की अभिव्यक्ति तो होगी। शुद्धता का आग्रह है और हम बड़े अकसर ग़लतियों पर ही ध्यान देते हैं। यह ध्यान उसे डिटैच करता है, एलिनेट करता है, ये एलिनेशन बनता जाता है

उसका। इससे लिखने के प्रति उसकी अरुचि एक शाश्वत अरुचि के तौर पर बदल जाती है। 'सादर' कहाँ लिखना है, 'सेवा में' कहाँ लिखना है, 'डेट' कहाँ लिखना है, 'महोदय' कहाँ लिखना है, हम इतनी यांत्रिक प्रक्रियाओं में उसे बाँध देते हैं कि उसकी जो स्वाभाविक और मज़ेदार अभिव्यक्तियाँ होती हैं, वो बँध जाती हैं।

प्रतिभा : मुख्य बात यह है कि बच्चे को भरोसा हो कि वो जो लिख रहा है उसको जिसके सामने सौंपेगा वो उसे उसी प्रेम से, उसी भाव से पढ़ेगा, जिस भाव से उसने लिखा है। जैसे ही बच्चे को ये भरोसा होता है उसके लिखने में आत्मविश्वास आता है और फिर लिखने को लेकर उसका डर, हिचक थोड़ी कम होती है। मृत्युंजय, आप उच्च प्राथमिक की बात कर रहे थे वहाँ विधाएँ भी शामिल होने लगती हैं न!, विधाओं में बच्चे किस तरह आगे बढ़ें और लिखने के दौरान किस तरह से उनको मदद हो? किस तरह की चुनौतियाँ उनको आती हैं?

मृत्युंजय : उच्च प्राथमिक में कविताएँ, कहानियाँ और गद्यांश भी पाठ्यक्रम में होते हैं। आमतौर पर हम इन विधाओं को जकड़न में देखने के आदी हैं। कविता है, कविता का ढाँचा है, कविता से कुछ सीख मिलती है, इसपर बहुत ज़ोर रहता है। पाठ, पाठ होता है। पाठ के पीछे प्रश्न होते हैं, जिनको हल करके परीक्षा तक जाना होता है। जैसा मैंने कहा, ऐसे में बच्चों पर मूल्यांकन का अतिरिक्त बोझ हो जाता है। वे बचपन से कहानियाँ सुनते भी हैं और बुनते भी। प्राथमिक स्तर के बच्चों के पास भी तरह-तरह की कहानियाँ होती हैं और वे कहानियाँ बनाते भी हैं। लेकिन पाठ्यक्रम की कहानी उसे शुद्ध क़िस्म की किसी चीज़ की तरह बताई जाती है। बच्चा उससे छेड़छाड़ कर सके, उसमें अपनी कल्पना जोड़ सके, यह जगह ही नहीं होती। कोई कहानी है और बच्ची से कहा गया है कि चलो इसको आगे बढ़ाते हैं तो उसके लिए उस विधा से एक तरह की दोस्ती कर पाना ज़्यादा आसान होगा। इसी तरह से कविता निष्कर्षों या सीखों पर केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। कविता-कहानी या अन्य गद्य के टुकड़े हैं, उनमें जो प्रक्रियाएँ चल रही हैं, उनसे बच्चा खेल पाए, उनको बदल पाए और अपनी चीज़ का निर्माण कर पाए। देखिए, रचने का बड़ा आनन्द है। हर स्तर पर इंसान को रचने का आनन्द आता है। शर्त यह है कि उस रचने को स्वीकार किया जाए, न कि बार-बार उसे ग़लत-सही, अच्छे-बुरे के वर्ग में रखा जाए। इस तरह का मूल्यांकन मददगार नहीं होता। बच्चा इन विधाओं की प्रक्रियाओं को समझे, उसे एहसास हो कि वो इन विधाओं की इन चीज़ों को बदल सकता है तो वो आगे जाएगा। मैंने कविता की बात की है, अब उसकी व्याख्या को ही लीजिए।



कोई ज़रूरी नहीं कि उसकी वही व्याख्या हो जो उसके शब्दार्थों से निकल रही है। बच्चा उसमें कोई अपनी कविता जोड़ सकता है या उसमें से कुछ शब्द लेकर कोई नई कविता बना सकता है। अगर उसको ये छूट है तब वो कविता ज़्यादा बेहतर तरीक़े से शायद समझ भी पाएगा और लिख भी सकेगा। लिखना क्या है? लिखना एक्सटेंशन है ख़ुद को अभिव्यक्त करने का, चीज़ों को समझने का। अगर चीज़ों की समझ बनेगी तो लिखने में भी वो दिखेगी। अगर चीज़ों की जड़ क़िस्म की समझ बनेगी तो लिखना भी जड़ क़िस्म का ही होता चला जाएगा। वाचिक भाषा और लिखित भाषा, ये एक दूसरे के पूरक हैं, और एक दूसरे को परिवर्तित करते रहते हैं, बेहतर बनाते रहते हैं, लेकिन अगर कहीं एक जगह भी जड़ता आई, कहीं एक जगह भी स्थिर कर दिया गया तो दूसरा भी अपने-आप स्थिर होने लगता है।

प्रतिभा : कोई कुछ ख़ास बिन्दु आपमें से कोई रखना चाहे तो कह सकते हैं?

खजान : स्कूल में लिखने के जो अभ्यास होते हैं वो लिखने को एक फ़ॉर्मेट बना देते हैं। दिवाली हमारा राष्ट्रीय निबन्ध था और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अगर किसी बच्चे से ये कहा जाए कि निबन्ध लिखिए, उसके सेट पैटर्न थे। आज भी हैं, दिवाली पर लिखना है या माँ के बारे में या गाय के बारे में लिखना है। ख़ासकर गाय के बारे में वही 10 लाइनें। यह चलता चला आ रहा है गुरुओं के गुरु, फिर उनके गुरुजी ने उनके गुरुजी ने पढ़ाया। अब चिट्ठी लिखनी है। उसका भी वही प्रारूप है और यहाँ तक कि सवाल-जवाब का भी।

प्रश्न यही है कि बच्चे की अपनी भाषा, जो उसने ख़ुद अर्जित की है, उसके अपने अनुभव लिखने में उनकी जगह कैसे बने? भाषा शिक्षण में, ख़ास करके लिखने के अभ्यास प्रारूप-आधारित ही होते हैं। पाठ का सारांश, कविता का भावार्थ, निबन्ध सभी के प्रारूप निर्धारित होते हैं। ये बहुत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। आरम्भ से मैं कह रहा हूँ कि प्री-स्कूल में भी बच्चे चित्रकारी करते हैं, लिखते हैं, बोलते हैं, अत: उसको लिखना, आहिस्ता-आहिस्ता आ ही जाएगा। कुछ मदद की ज़रूरत होती है। जैसे, ध्वनि को जोड़-तोड़कर देखना या कि अक्षर-मात्राएँ कैसे आवाज़ बदलती हैं, शक्लें बदलती है, उसका बोध कराना। यह कराना चाहिए, तभी वह लिपि



चित्र : प्रशांत सोनी



चिह्नों को समझ पाएगा। मगर संकट वहाँ से शुरू होता है कि बच्चा लिखे क्या? लिखने के अच्छे टास्क कैसे बनाए? एक मुझे लगता है कि महज़ यह कह देना, कि दिवाली पर लिखो, स्कूल, मेले पर लिखो, मदद नहीं करता। जो भी मुद्दा हो उसपर एक चर्चा आयोजित हो और तब बच्चे लिखें। इस चर्चा में हो सकता है कि 10-20 मेलों के एक्सपीरियन्स मेरी समझ का भी पार्ट बन जाएँ। अब मेले के बारे में लिखने में, मैं अपना ख़ाका बना लूँगा। हो सकता है दूसरे के अनुभव भी ले लूँ जो मैंने नहीं देखे। कोई बात नहीं, लिखने की प्रक्रिया हो रही है, लिखने की प्रैक्टिस हो रही है। इसी तरीक़े से लेखन के एक्सपोज़र भी हों। मसलन, चिट्ठियाँ लिखना है तो 10-20 चिट्ठियाँ बच्चे को पढ़ने को मिलें, ताकि चिट्ठी कैसे लिखें, यह बच्चे समझें। यदि पढ़ने और मौखिक चर्चाओं के अवसर बच्चों को मिलते हैं तब जाकर वे क्रिएशन की तरफ़ बढ़ते हैं। फिर रचना में ग़लतियाँ हो जाएँगी, लेकिन तुरन्त उसका सुधार ज़रूरी नहीं है।

एक समस्या मैंने ये भी देखी कि बच्चों के पास विचार हैं, लेकिन लिखने की गति नहीं है। पाँच-छह वाक्य लिखने बाद उँगलियाँ थक जाती हैं, मन का विचार तितर-बितर होता है और बच्चा कहता है कि बस अभी इतना ही लिखूँगा, मैं थक गया। मैं आपको यह मौखिक रूप से बता सकता हूँ। अगर वक़्त ही कम दिया गया है, अभ्यास उस तरीक़े के नहीं हैं, जो विचार को उनके संयोजन के लिए समय दें, तब भी समस्या है।

प्रतिभा : दो-तीन चीज़ें महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों के पास लिखने के मौक़े कितने हैं? लिखने के जितने ज़्यादा अवसर होंगे, वे लिखना सीखेंगे। दूसरा, उनकी अभिव्यक्ति पर हमारा भरोसा होना होगा। अभिव्यक्ति सुगठित हो या न हो, लेकिन नैसर्गिक अभिव्यक्ति के लिए जगह हो। बच्चों के जीवन के रंग, उनकी भाषा हम तक आए, तो हमारी दुनिया थोड़ी और ख़ूबसूरत होगी ही, लिखना इतना बोझिल नहीं होगा। जो समस्या बच्चों की है वो हम बड़ों के लिए भी है। हमें भी अभी लिखने को कहा जाए तो मुश्किल आती है। हम बात करने वाले लोग हैं। लिखने में हमें मुश्किल आती है, तो ये मुश्किल शायद इस तरह धीरे-धीरे सॉल्व होगी। आज का संवाद मुझे लगता है कि बहुत काम का रहा। आप सभी का बहुत-बहुत शुक्रिया।